जो तोकू काँटा बुवै ताहि बोय तू फूल

Jo Toku Kanta bove Tahi Boye Phool

दुष्टता और सज्जनता की सीमा : इस विश्व में दुष्टता ही सज्जनता की कसौटी है; क्योंकि जब दुष्ट अपने कुकृत्यों से सज्जन को चोट पहुँचाता है, तब वह अपनी सहनशीलता से सब हर्जुम कर जाता है और प्रतिशोध की भावना को कभी भी प्रगट नहीं होने देता। इसी कारण से वह समाज में सज्जनता की उपाधि से स्वयं ही अलंकृत हो जाता है। प्रायः विश्व के सभी वर्ग के लोग सत् की प्रशंसा और असत् की निन्दा करते हैं, किन्तु जब उनके सम्मुख सत्य और असत्य की परिस्थितियों का सामना करने का अवसर आता है, तो वे पूर्व कल्पित सत् की उन सीमाओं को चुटकी में भूल जाते हैं। सिर्फ सज्जन पुरुष में ही वह विवेकशील बुद्धि होती है, जिससे वह उस परीक्षा रूपी कसौटी पर खरा उतर जाता है।

मानव की श्रेष्ठता : मानव सृष्टि की विभिन्न योनियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसकी श्रेष्ठता उसके विवेक पर अवलम्बित है; क्योंकि दूसरी योनियों की अपेक्षा, मन, बुद्धि, चित्त और गर्व की विशेषता प्राणी मात्र को ही दी गई है, जिससे उसमें सत् और असत् के मनन की क्षमता आ गई है, इस पर भी इस विश्व में कुछ ऐसे प्राणी दृष्टिगत होते हैं जो पशु वृत्ति में ही अपने जीवन को लीन रखते हैं अर्थात् पशुओं के समान ही आहार, निद्रा, और भय आदि में लग कर अपने जीवन को निरर्थक बना देते हैं जबकि मानवी ध्येय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है। यह जीवन युक्ति और मुक्ति दोनों का ही द्वार माना गया है; किन्तु विलासी जीवन को अन्ततोगत्वा पश्चात्ताप करना पड़ता है, जबकि सहिष्णु एवं सत्यनिष्ठ जीवन नैसर्गिक शांति को पा लेता है।

सत्कर्म की महत्ता : सत्कर्म द्वारा ही मानव अपनी ऐहिक और पारलौकिक उन्नति कर सकता है। सच मानो तो सत्कर्म ही उसका वास्तविक धर्म है। समग्र मनुष्यों को जीवन सत्कर्म पर ही आधारित रहता है। एक पल के लिए भी इन कर्मों से छुटकारा नहीं मिलता और इन्हीं के अनुसार जीवात्मा को स्वर्ग, पृथ्वी और नरक की यात्रा करनी पड़ती है। जब तक वह कर्म के फल में आसक्त रहता है तब तक उसे जन्म और मृत्यु के चक्र से निवृत्ति नहीं मिल सकती है। अतः भगवद्गीता में फल की इच्छा का त्याग करने के बाद ही सत्कर्म

करने की प्रेरणा दी गई है। सत्कर्मों में स्वार्थ का त्याग और लोकहित की भावना रहती है। इसलिए मानव जीवन की सफलता इसी में निहित है। इसका अनुकरण करने वाले महर्षि दधीचि, शिवि और कर्ण आदि महामानव मानवी जीवनके आदर्श बने हैं। प्रयोद, उष्ण धरा की वृद्धि हेतु जल धारण करते हैं। और महान् आत्माएँ दूसरों के अभ्युदय के हेतु समृद्धि धारण करते हैं।

ईश्वर की आस्था का महत्त्व : जिस हृदय में ईश्वरीय आस्था और उत्कट श्रद्धा का बोलबाला रहता है, वह सात्विकता और सत् कर्तव्य का स्रोत होता है। नास्तिक के लिए तो इस दुनिया में पाप और पुण्य की कोई सीमा होती ही नहीं है। इसके अलावा पुनर्जन्म पर विश्वास करने से भी सत्कर्मों की प्रेरणा मिलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि आस्तिक का अन्त:करण सदैव शुद्ध रहता है। उसमें सदैव परोपकार की भावना का वास होता है, जिसके कारण उसका जीवन सफलता के सोपान पर निर्विघ्न चढ़ जाता है।

परोपकार की भावना : परोपकारी हृदय में कभी भी प्रतिकार अथवा प्रतिशोध को स्थान नहीं मिलता है। उसका पुण्य सदैव पाप पर विजयी रहता है अर्थात् पुण्य के द्वारा पाप को परास्त किया जा सकता है। इसलिए पापी के लिए कभी पाप प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। सांसारिक सफलता के लिए कुछ राजनैतिक उपाय यद्यपि काँटे से काँटा निकालना चाहिए और विष से विष शांत करना चाहिए आदि सुने जाते हैं। इस पर भी प्रस्तुत उपदेश से भी भौतिक सफलता चाहे मिले या न मिले; किन्तु मानवता की प्रेरणा एकमात्र अभीष्ट मानकर आध्यात्मिक प्राप्ति को ही लक्ष्य बनाया गया है। जब विश्व समाज उसके लिए बुराई की इच्छा करे; किन्तु प्रतिक्रिया के रूप में वह किंचित मात्र भी अपने हृदय में दु:खी नहीं हो, बल्कि शांत स्वभाव होकर विश्व को आशीर्वाद और शुभकामनाएँ प्रस्तुत करता रहे, तो उसकी यह स्थिति साधक की बन जाती है और वह कर्मों के संघर्ष में रहकर भी संन्यासी के समान विश्व से निर्लिप्त हो जाता है; क्योंकि राग और द्वेष की विजय के लिए ही तपस्वी और मुनि वनों में जा बैठे थे ; किंतु गृहस्थ में रहकर भी कितने ही कर्मयोग अपने हृदय को राग और द्वेष से रहित बना सकते उन्हीं के लिए कबीर जी ने प्रेरणा दी कि बदले में मिलने वाले दु:ख की ओर न देखकर विश्व के लिए केवल सुख ही देख।

सांसारिक दृष्टिकोण के आधार पर युगावतार गाँधी ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि शत्रु को मित्रता से वश में करना चाहिए और हिंसा पर अहिंसा से विजय प्राप्त करनी चाहिए।

उन्होंने केवल सत्याग्रह से ही अस्त्रों और शस्त्रों से सुसज्जित साम्राज्य की सेनाओं को पराजित किया है। प्रह्लाद और युधिष्ठिर जैसी महान् आत्माओं ने कभी भी प्रतिद्वन्द्वियों का बुरा नहीं चाहा, तभी उन्हें शुभ फल की प्राप्ति हुई ।

आकांक्षाओं से वशीभूत होकर मानव कर्म-क्षेत्र में स्वतन्त्र है; किन्तु हर कर्म में उसकी आत्मा का साक्ष्य रहता है, जिससे यह कहा जाता है कि कर्म का फल ईश्वर के अधीन है पतंजलि के कथानुसार पूर्व जन्म के किये हुये कर्मों के फल में ही मानव को इस जीवन में जन्म, अवस्था और भोग प्राप्त होते हैं तथा गोस्वामी तुलसी दास ने भी इस पृथ्वी को कर्म प्रधान माना है और सब प्राणियों को अपने-अपने कर्मों का फल भोगने वाला स्वीकार किया है। इस विश्व की व्याख्या करने वाले दूसरे मनीषियों ने भी सरिता की उस धारा से इसकी तुलना की है, जिसमें एक साथ कितने ही तिनके कभी एकत्रित होकर बहते हैं। और कभी पृथक् होकर मानव स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता है। अपने लिए स्वयं बनाता है। स्वर्ग और नरक ही नहीं, अपितु इस धरा पर भी उच्च और नीच स्थान अपने लिए स्वयं बनाता है।

दया का महत्त्व : तीव्र धारा में बहते हुए बिच्छ को देख करुणा से आर्द्र मुनि ने उसे बाहर निकालने के लिये ज्यों-ज्यों हाथ उसकी ओर बढ़ाया, त्यों-त्यों वह डंक मारता गया। तब तट पर से किसी ने कहा, "बहने दो, दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं त्याग सकता है।" तत्क्षण मुनि ने कैसे छोड़ सकता हूँ? उत्तर दिया कि जब वह अपनी दुष्टता नहीं त्यागता, तो मैं अपनी सज्जनता कैसे छोड़ सकता हूँ?

अत: सच कहा है, 'जो तोकू काँटा बुवै ताहि बोय तु फूल ।"